Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 13, Issue 1 | May 2025 - October 2025 | pp. 18-24

शॉपेनहावर के दर्शन में दुःख का तात्त्विक स्वरूप और मुक्ति की सम्भावना

आँचल

शोधार्थी, दर्शन शास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

आधुनिक दार्शनिक विमर्श में ऑर्थर शॉपेनहावर का चिंतन एक ऐसी वैचारिक धारा को जन्म देता है, जो जीवन की मूलभूत पीड़ा, इच्छा की निरंतरता, तथा अस्तित्वगत तनाव को दर्शनशास्त्र के केंद्र में प्रतिष्ठित करती है। शॉपेनहावर का विमर्श केवल निराशावादी दृष्टिकोण तक सीमित नहीं रहता, अपितु वह सौंदर्य बोध, करुणा और आत्मनिग्रह के माध्यम से उस पीड़ा से परे जाने की संभावनाएँ भी उद्घाटित करता है। शॉपेनहावर का यह दर्शन आत्मान्वेषण का एक ऐसा यत्न है, जो जीवन के कटु सत्य से मुँह मोड़ने के स्थान पर, उसके भीतर से ही मुक्ति की राह खोजता है। यह शोध शॉपेनहावर के मूल ग्रंथों के गहन विश्लेषणात्मक अध्ययन तथा उनकी दार्शनिक अवधारणाओं के तार्किक व सैद्धान्तिक विवेचन पर आधारित है। साथ ही यह जीवन के दुःख से मुक्ति के शॉपेनहावर के दर्शन को सम्पूर्ण और समृद्ध रूप में भी प्रस्तुत करता है। यह शोध मानव के अस्तित्वगत संघर्ष और उसकी मुक्ति की संभावना के बीच एक गहन दार्शनिक संवाद प्रस्तुत करता है, जो आज के युग में भी प्रासंगिकता बनाए रखता है। अंततः यह अध्ययन शॉपेनहावर की वैचारिक विरासत को समकालीन संदर्भों में पुनर्स्थापित करने का एक दार्शनिक प्रयास है।

संकेताक्षर—*अस्तित्वगत दुःख, आत्मनिषेध, असेटिसिज्म, शून्यता, स्थितप्रज्ञ मौन, मोक्षदर्शन*

प्रस्तावना

मनुष्य की प्रवृत्ति सदैव से अस्तित्व के गूढ़ प्रश्नों को समझने और उनके उत्तर खोजने की रही है। जीवन का अर्थ, दुख का कारण, और आत्मा की मुक्ति; ये प्रश्न हर युग के दार्शनिक चिंतन के केन्द्र में रहे हैं। ऐसी गहनता से चिंतन करने वाले दार्शनिकों में ऑर्थर शॉपेनहावर का स्थान विशेष है, जिन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण कृति 'द वर्ल्ड एज विल एंड रेप्रेजेंटेशन' में एक ऐसी दार्शनिक समझ प्रस्तुत की, जिसने आधुनिक अस्तित्ववादी और पेसिमिस्टिक परंपराओं की नींव रखी।

ऑर्थर शॉपेनहावर का दर्शन 19वीं सदी के पश्चिमी दार्शनिक परिदृश्य में एक अनूठा और गहन मंथन है, जिसने मानव अस्तित्व की अंतर्निहित पीड़ा और उसकी जटिलताओं को अत्यंत स्पष्टता से उद्घाटित किया। उनका चिंतन जीवन को एक सतत प्रवृत्ति, इच्छा और आकांक्षा के भंवर के रूप में देखता है, जो मनुष्य को अनन्त दुःख के घेरे में बांधता है। इस सिद्धांत की नींव 'विल' (इच्छा, प्रवृत्ति) की अवधारणा है, जो न केवल व्यक्ति के मन की तमाम लालसाओं का मूल है, बल्कि संपूर्ण प्रकृति की जीवंत गति का भी आधार है।

शॉपेनहावर के लिए संसार न तो ईश्वर की कृपा से निर्मित स्वर्ग है, न ही अंतर्निहित सृष्टि की कोई अंतिम सार्थकता। बल्कि यह एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जो अनवरत इच्छा की पूर्ति के लिए अनजाने संघर्ष और पीड़ा को जन्म देती है। यह "विल" अनैच्छिक, अज्ञानी और निरंतर इच्छुक है, जो कभी स्थिरता या तृप्ति को प्राप्त नहीं कर पाती। इसलिए जीवन का स्वरूप मूलतः दुःखमय है।

संसार में व्याप्त इस दुःख का समाधान शॉपेनहावर के दर्शन का प्रमुख प्रश्न रहा है। उन्होंने यह माना कि साक्षात्कार की

तीन अवस्थाओं के माध्यम से मनुष्य इस दुःख से उबर सकता है—प्रथम, सौंदर्य के अनुभव के माध्यम से 'विल' की आकांक्षा से एक क्षणिक विमुखता; द्वितीय, करुणा के आधार पर नैतिकता की स्थापना, जो इच्छाओं के परे जाती है; और तीसरा, 'विल' के पूर्ण निषेध के द्वारा, जहाँ मनुष्य अपनी सारी इच्छाओं से मुक्त होकर शून्यता के अनुभव में प्रवेश करता है। यह अंतिम अवस्था पूर्ण मुक्ति का स्वरूप है, जो पूर्वी दार्शनिक परंपराओं, विशेषतः बौद्ध और हिंदू दर्शन के निर्वाण और मोक्ष की अवधारणाओं के निकट है।

शॉपेनहावर के विचारों की महानता इस बात में भी है कि वे जीवन की कठोर सच्चाइयों को छिपाने के बजाय उनका साहसपूर्वक सामना करते हैं, और उनके दर्शन ने आधुनिक अस्तित्ववाद, निहिलिज्म और नैतिक दर्शन को गहरा प्रभाव प्रदान किया। आज के युग में, जहाँ तकनीकी प्रगति के बावजूद मनुष्य मानसिक पीड़ा, अस्तित्वगत संकट और निराशा से घिरा है, शॉपेनहावर का चिंतन हमें जीवन के दारुण स्वभाव की जड़ों तक पहुँचने और उससे मुक्ति की संभावना को समझने में मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

"विल" और जीवन की पीड़ा

ऑर्थर शॉपेनहावर के दर्शन की आधारशिला "विल" की अवधारणा है, जो उनके मुख्य ग्रंथ "द वर्ल्ड ऐज़ विल ऐंड रिप्रिज़ेंटेशन (1818)" में विस्तार से प्रस्तुत की गई है। "विल" को शॉपेनहावर ने केवल व्यक्तिगत इच्छाओं या आकांक्षाओं के रूप में ही नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक, अनैच्छिक और निरंतर गतिशील शक्ति के रूप में अनुभव किया, जो समस्त जीव-जंतुओं और प्राकृतिक जगत को संचालित करती है। उन्होंने लिखा है, "विल", जो संसार का तात्विक सार है, स्वयं एक अनायास, अदृश्य और अज्ञानी शक्ति है, जो हर जीव और वस्तु में कार्यरत है।" (शॉपेनहावर, भाग I, पृ. 142)

'विल' की यह निरंतर प्रवृत्ति जीवन की सभी आकांक्षाओं की जड़ है, और यही वह कारण है जिससे मनुष्य जीवन में अपार पीड़ा और असंतोष का अनुभव करता है। मनुष्य की तृष्णा—वह अंतर्निहित इच्छा जो निरंतर कुछ पाने की लालसा करती है—कभी पूर्ण संतुष्टि को प्राप्त नहीं कर सकती। जब एक इच्छा पूरी होती है, तो दूसरी तुरंत उसकी जगह ले लेती है; इस प्रकार इच्छा और संतोष के बीच का विरोध मनुष्य को दुःख के अचूक चक्र में बांध देता है। इस संदर्भ में शॉपेनहावर स्पष्ट करते हैं कि, "जीवन के यथार्थ को समझना चाहते हैं, तो हमें यह समझना होगा कि इच्छाओं का पूरा होना कभी भी स्थायी सुख नहीं देता।" (उपर्युक्त, पृ. 150)।

इसके अतिरिक्त, शॉपेनहावर की मान्यता है कि यह "विल" न केवल मनुष्यों में, बल्कि प्रकृति के प्रत्येक तत्व में विद्यमान है। इसलिए संसार का समग्र स्वरूप ही दुःखमय और संघर्षपूर्ण है। यह दृष्टिकोण पारंपरिक तर्क और धर्म के सुखदायी दृष्टिकोण से बिलकुल भिन्न है, जहाँ संसार को ईश्वर की रचना या आनंद का स्रोत माना जाता है। शॉपेनहावर के अनुसार, संसार की वास्तविकता 'प्रतिनिधित्व' मात्र है, अर्थात् वह वस्तु जो मनुष्य के ज्ञान के दायरे में आती है, जबकि "विल" उसका तत्त्व है, जो अकथनीय और अज्ञात शक्ति के रूप में सभी अनुभवों के पीछे कार्यरत है।

ऑर्थर शॉपेनहावर के दर्शन में "विल" के साथ सबसे निकट और अनिवार्य रूप से संबद्ध अनुभूति है—दुःख। उनके अनुसार, जीवन का वास्तविक स्वरूप सुख में नहीं, बल्कि दुःख में निहित है। यह दुःख केवल एक संवेदनात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि अस्तित्व की बुनियादी संरचना है।

शॉपेनहावर की दृष्टि में समस्त सजीव और निर्जीव सत्ता एक अंध, अचेतन "विल" द्वारा संचालित है जो निरंतर स्वयं को बनाए रखने, विस्तारित करने, और पुनरुत्पन्न करने के लिए संघर्षरत है। यह संघर्ष ही दुःख का कारण है।

"ऑल विलिंग अराइज़ेज़ फ्रॉम लैक, फ्रॉम डिफ़िशियंसी, ऐंड देअरफ़ोर फ्रॉम सफ़रिंग." (उपर्युक्त, पृ. 56)

शॉपेनहावर के अनुसार, मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन इन पीड़ाओं के चक्र में बंदी है—भी शरीर की व्यग्रता में, कभी मन की असंतोषजनक तृष्णा में, और कभी अस्तित्व की अर्थहीनता के बोध में।

अब हम इस दुःख को तीन मुख्य स्तरों में समझ सकते हैं—

शारीरिक दुःख—शरीर के बंधन में स्थित पीड़ा। मनुष्य का शरीर ही दुःख का पहला केंद्र है। शॉपेनहावर ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा कि शरीर की जरूरतें निरंतर और तृप्ति क्षणिक होती है। भूख, प्यास, थकान, रोग, वृद्धावस्था, मृत्यु कृ ये सभी शरीर की अवस्थाएँ हैं, जिन्हें टालना असंभव है।

"वॉन्ट और नीड आर द सोर्सेज़ ऑफ़ द मोस्ट इमीडियट ऐंड डिस्ट्रेसिंग सफ़रिंग." (उपर्युक्त, पृ. 56)

शरीर नित्य ही किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति की मांग करता है। और यदि ये आवश्यकताएँ पूरी न हों, तो वे दुख के तीव्र रूप में प्रकट होती हैं। यहाँ शरीर "विल" का प्रत्यक्ष और सबसे प्रारंभिक माध्यम बनता है कृ जो प्राकृतिक नियमों से बंधा, असहाय, और क्षणभंगुर है।

मानसिक/भावनात्मक दुःख—विचार और कल्पना का बोधात्मक पीड़ा में परिवर्तित होना। मनुष्य, अन्य प्राणियों की तुलना में, केवल शारीरिक इच्छाओं से नहीं, बल्कि मानसिक द्वंद्वों, स्मृतियों, अपेक्षाओं, और कल्पनाओं से भी दुखी होता है।

शॉपेनहावर कहते हैं कि मनुष्य की चेतना उसकी कल्पना को विस्तारित करती है, जिससे वह सब कुछ चाहता है जो वह नहीं है, और जो दूसरों के पास है। यह तुलना और असंतोष—ईर्ष्या, आत्मग्लानि, भय, व्यर्थता का बोध, सभी मानसिक दुःखों के स्रोत हैं।

"वी फ़ील पेन फ्रॉम लॉस, सारो फ्रॉम मेमरी, एन्वी फ्रॉम कम्पैरिजन." (परेरगा एंड पैरालिपोमेना भाग-II)

मनुष्य भविष्य की अनिश्चितता से भयभीत रहता है, अतीत की स्मृतियों में उलझा रहता है, और वर्तमान में संतोष नहीं पा सकता कृ यह स्थिति उसे निरंतर मानसिक पीड़ा में रखती है। यह दुख बाहरी नहीं, भीतर से उत्पन्न होता है, जो लगातार मन को तोड़ता है।

अस्तित्वगत दुःख—स्वयं के "होने" से उत्पन्न पीड़ा। शॉपेनहावर की दार्शनिक मौलिकता इस तीसरे स्तर—अस्तित्वगत दुःख में परिलक्षित होती है। उनका मानना था कि मनुष्य एकमात्र प्राणी है जो स्वयं की मृत्यु, अनित्यत्व, और अर्थहीनता के प्रति जागरूक है।

"लाइफ इज़ अ बिज़नेस दैट डज़ नॉट कवर द कॉस्ट्स." (परेरगा, भाग-I)

यह दुःख इसलिए नहीं है कि कोई भौतिक वस्तु प्राप्त नहीं हुई, बल्कि इसलिए कि स्वयं का अस्तित्व ही एक भार बन जाता है। मनुष्य अनजाने ही जीवन के उद्देश्य की तलाश करता है, पर हर उत्तर उसे और अधिक खालीपन की ओर ले जाता है।

यह वही अवस्था है जिसे आधुनिक दर्शन ने "एग्ज़िस्टेंशल ऐंग्स्ट" कहा जो बाद में नीत्शे, किर्केगार्ड, और सार्त्र जैसे चिंतकों के लेखन में प्रतिध्वनित होती है, किंतु बीज रूप में यह शॉपेनहावर में स्पष्टतः विद्यमान है।

तीनों स्तरों में अन्तःसंबंध—इन तीनों दुःखों का परस्पर संबंध "विल" के माध्यम से जुड़ा है—

क्र. सं.	स्तर	स्रोत	परिणाम
1	शारीरिक	शरीर की आवश्यकताएँ	क्षणिक संतोष के बाद पुनः भूख और पीड़ा
2	मानसिक	कल्पना, तुलना, असंतोष	चिंता, ईर्ष्या, शून्यता
3	अस्तित्वगत	जीवन की अर्थहीनता	

उन्होंने मानव जीवन के दुख को मात्र मानसिक या भावनात्मक समस्या के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे अस्तित्व का मूलभूत पहलू माना। इस प्रकार वह दुख को अस्थायी या आकस्मिक नहीं, अपितु अनिवार्य और स्थायी स्थिति बताते है। "विल" की यह प्रकृति मनुष्य को जीवन के निरंतर संघर्ष और असंतोष की स्थिति में रखती है, जिसका अंतर्निहित कारण वह असीम तृष्णा है जिसे कोई भी पूर्ण नहीं कर सकता।

इस आधार पर शॉपेनहावर ने जीवन की पीड़ा को समझने और उससे मुक्ति की खोज में नई दिशा प्रदान की। उन्होंने बताया कि जब तक मनुष्य "विल" की प्रकृति को समझकर उससे ऊपर उठने का प्रयास नहीं करता, तब तक दुःख के चक्र से मुक्त होना असंभव है। इसलिए यह दर्शन केवल जीवन की नकारात्मकता का परिचय नहीं देता, बल्कि उसके पार जाकर मुक्ति की संभावना को भी उजागर करता है।

कला और सौंदर्य के माध्यम से दुःख से अस्थायी मुक्ति

"विल" की अटूट गति और उससे उत्पन्न पीड़ा के मध्य, शॉपेनहावर सौंदर्य को एक अस्थायी, परन्तु प्रभावी निर्वाण स्वरूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, जीवन की पीड़ा से क्षणिक मुक्ति प्राप्त करने के लिए मनुष्य कला और सौंदर्य की शरण में जा सकता है। यह सौंदर्यबोध कोई साधारण मानसिक स्थिति नहीं, बल्कि एक गहन दार्शनिक अनुभव है, जिसमें व्यक्ति स्वयं को अपनी इच्छाओं से परे ले जाता है। जब वह किसी चित्रकला, संगीत, प्राकृतिक दृश्य या किसी कलात्मक कृति में पूरी तरह डूबता है, तब वह अपनी आत्म-चेतना, इच्छा और लालसा से मुक्त होकर केवल द्रष्टा बन जाता है

कृ एक ऐसा दर्शक जो समय, उद्देश्य और भोग की सीमाओं से बाहर खड़ा होता है (शॉपेनहावर, भाग-I, §34, पृ. 178)।

शॉपेनहावर इस अनुभव को उस अवस्था से जोड़ते हैं, जिसमें व्यक्ति "प्योर, विल-लैस, टाइमलैस सब्जेक्ट ऑफ़ नॉलेज." बन जाता है (उपर्युक्त, पृ. 179)। इस क्षण में वह स्वयं को अपनी आत्मकेंद्रण से हटाकर वस्तु की शुद्ध रूप में अनुभूति करता है, न उसे पाना चाहता है, न भोगना, न बदलना; वह केवल उसे देखता है, समझता है, और उसमें लीन हो जाता है। कला यहाँ केवल मनोरंजन नहीं, एक दार्शनिक साधन बन जाती है, ऐसी साधना, जिसमें मनुष्य अपने अस्तित्व की वेदना को कुछ पल के लिए पीछे छोड़ सकता है (जैनवे, 112; यंग, 64)।

विशेषतः संगीत को शॉपेनहावर ने "विल" के सर्वाधिक निकट और प्रत्यक्ष अनुवाद के रूप में देखा। उनके शब्दों में, "म्यूज़िक एक्स्प्रेसिज़ इन अ लैंग्विज़ ऑफ़ इट्स ओन द इनर बीइंग, द इन-इट्सैल्फ़, ऑफ़ द वर्ल्ड." (शॉपेनहावर, भाग-I, §52, पृ. 257)। संगीत में कोई दृश्य या कथा नहीं होती, फिर भी वह हमारी भावनाओं, आशाओं और निराशाओं को एक रहस्यमयी भाषा में व्यक्त करता है, मानो वह स्वयं हमारे भीतर की छिपी हुई इच्छाओं और उनके संघर्ष को प्रतिध्वनित कर रहा हो। यही कारण है कि संगीत हमें भीतर तक उद्वेलित करता है कृ और साथ ही, हमें उनसे ऊपर उठने की भी राह दिखाता है (मॅगी पृ. 134)।

कला का यह अनुभव अंततः व्यक्ति को उस मानसिक अवस्था तक पहुँचा सकता है जहाँ वह "विल" की सत्ता को क्षण भर के लिए निष्क्रिय कर देता है। यह निष्क्रियता यद्यपि स्थायी नहीं होती, परन्तु उसका दार्शनिक महत्व अत्यंत गहरा है, क्योंकि यह दिखाता है कि "विल" की सत्ता को चुनौती दी जा सकती है, उसे अस्वीकार किया जा सकता है, और यह अस्वीकार आगे चलकर शॉपेनहावर के 'मुक्ति मार्ग' की ओर ले जाता है (ऐटवेल, 94, जैनवे, 118)।

करुणा और नैतिक विवेक के माध्यम से "विल" का क्षरण

यदि शॉपेनहावर के दर्शन को एक बहते हुए जल की तरह समझा जाए, तो सौंदर्य उसका पहला पत्थर है जिस पर चेतना रुकती है, और करुणा वह दूसरी लहर है जिसमें चेतना स्वयं के संकुचित बंधनों को छोड़कर व्यापक रूप ग्रहण करती है। जहाँ सौंदर्य जीवन की इच्छा ("विल") से क्षण भर की दूरी रचता है, वहाँ करुणा उस दूरी को एक नैतिक संबंध में परिवर्तित करती है। सौंदर्य केवल देखने की बात करता है, करुणा जीने की और इस प्रकार सौंदर्य का दर्शन नैतिकता में साकार होता है।

शॉपेनहावर मानते हैं कि जब तक मनुष्य अपनी आकांक्षाओं और तृष्णा के घेरे में बना रहता है, तब तक वह "विल" का दास बना रहता है। परन्तु जैसे ही वह किसी दूसरे के दुःख को अपने दुःख की तरह अनुभव करता है कृ स्व और पर के बीच की सीमाएँ ढहने लगती हैं। यहीं पर वह करुणा जन्म लेती है, और यही वह क्षण है जहाँ "विल" की अनिवार्यता को व्यक्ति पहली बार अस्वीकार करता है।

शॉपेनहावर लिखते हैं—"कम्पैशन इज़ द रियल बेसिस ऑफ़ ऑल वॉलन्टरी जस्टिस ऐंड जेन्यूइन लविंग-काइंडनेस, ऑल ट्रू ऐंड प्योर मॉरल ऐक्शन्स आर रूटेड इन इट, ऐंड टू द एक्स्टेन्ट दैट इट इज़ ऐब्सेंट, सच ऐक्शन्स लूज़ देअर मॉरल वैल्यू." (शॉपेनहावर, आर्थर, भाग-I, §66, पृ. 372)

यहाँ नैतिकता कोई दार्शनिक वाक्य नहीं, बल्कि अस्तित्वगत जागरण बन जाती है। व्यक्ति अब केवल अपने जीवन की नहीं, जीवन के संपूर्ण पीड़ित अनुभव की जिम्मेदारी लेने लगता है। वह जो पहले केवल देखने वाला था, अब कार्यरत है—मौन सहवेदना से सक्रिय करुणा की ओर।

यह परिवर्तन शॉपेनहावर की पूरी तात्त्विक व्यवस्था के लिए केंद्रीय है। क्योंकि करुणा में पहली बार मनुष्य "विल" के विरुद्ध खड़ा होता है न किसी धार्मिक आदेश के कारण, न सामाजिक अनुशासन के वश में, बल्कि इसलिए कि वह अब दूसरे में स्वयं को देखता है। क्रिस्टोफर जानावे लिखते हैं—"शोपेनहावर'ज़ एथिक्स आर रेवोल्यूशनरी इन दैट दे डिराइव नॉट फ्रॉम ड्यूटी, बट फ्रॉम द कोलैप्स ऑफ़ ईगोइज़म." (जैनवे, पृ. 129)

यह करुणा दो नैतिक रूपों में सामने आती है—एक, न्याय, जो दूसरों को कष्ट न देने की शपथ है, और दूसरा, परोपकार, जो स्वयं की सुख-सुविधा त्यागकर दूसरों की पीड़ा हरने का प्रयत्न करता है। दोनों ही स्थितियाँ "विल" के आत्म-केन्द्रित स्वभाव को तोड़ती हैं। इसीलिए शॉपेनहावर का नैतिक दर्शन

कर्मकांड और नियमों से ऊपर उठकर उस अंतर्दृष्टि की मांग करता है जो 'मैं' से 'हम' तक की यात्रा तय करती है।

फिर भी, यह नैतिक अवस्था अंतिम नहीं है। करुणा से उपजी यह नैतिकता व्यक्ति को उस गहनतम अवस्था की ओर इंगित करती है, जहाँ वह स्वयं के होने से ही विरक्त हो जाता है। एक ऐसी दशा, जिसे शॉपेनहावर "असेटिसिज्म" कहते हैं। जूलियन यंग इस प्रक्रिया को एक मध्य-सेतु मानते हैं—"कम्पैशन इज़ द बिगिनिंग ऑफ़ द डिनायल ऑफ़ द विल—नॉट इट्स एंड." (यंग, पृ. 86)

करुणा, इस दृष्टि से, शॉपेनहावर की दार्शनिक प्रणाली में एक नैतिक संक्रमण-बिंदु है—न केवल सोच का, बल्कि अस्तित्व की दिशा का भी। यह वह क्षण है जहाँ व्यक्ति पहली बार "विल" की सत्ता को मूल्य की कसौटी पर परखता है और अंततः उस अस्वीकार की ओर अग्रसर होता है जिसे शॉपेनहावर मोक्ष के रूप में प्रस्तावित करते हैं।

आत्म-निषेध और "विल" का पूर्ण उन्मूलन : मुक्ति की चरम स्थिति

जहाँ करुणा व्यक्ति को स्वयं के संकुचित स्वार्थ से बाहर निकालकर अन्य की पीड़ा के प्रति संवेदनशीलता की ओर ले जाती है, वहीं आत्म-निषेध उस स्थिति का चरम रूप है, जहाँ व्यक्ति पूर्ण रूप से "विल" का परित्याग कर देता है। करुणा यदि नैतिक जागरण है, तो आत्म-निषेध आध्यात्मिक मुक्ति की ओर अग्रसर चेतना की परिणति है। शॉपेनहावर के अनुसार, यह वही क्षण होता है जब व्यक्ति न केवल दूसरों के प्रति सहवेदना करता है, बल्कि स्वयं के होने की इच्छा से ही विरक्त हो जाता है।

यह अवस्था कोई सिद्धांत नहीं, बल्कि एक गहन अनुभूति है—एक ऐसा आंतरिक मोड़ जहाँ अस्तित्व अपने ही आधार ("विल") को अस्वीकार कर देता है। शॉपेनहावर के शब्दों में—"द डिनायल ऑफ़ द विल इज़ द वे टु साल्वेशन... इट इज़ द पाथ दैट लीड्स बियॉन्ड सफ़रिंग, बियॉन्ड इंडिविजुअलिटी, टु द इटर्नल." (शॉपेनहावर, भाग-I, §68, पृ. 389)

वह व्यक्ति जो इस अवस्था में पहुँचता है, वह किसी बाहरी त्याग से नहीं, बल्कि आंतरिक अस्वीकार के कारण इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। वह अब संसार को उस रूप में नहीं देखता जिसमें इच्छा कार्यरत है—भोग्य, प्राप्तव्य, पीड़ादायक। बल्कि वह उसे एक शून्य, निर्लिप्त, शांत उपस्थिति के रूप में देखता है।

ऐसे व्यक्ति की दशा वह नहीं जो सांसारिकता से पलायन करे, बल्कि वह है जो सांसारिक बंधनों से मुक्त हो चुकी हो। शॉपेनहावर लिखते हैं—"द विल टर्न्स बैक अपॉन इट्सेल्फ़, डिनाइज़ इट्स ओन नेचर, ऐंड सीज़ेज़ टु बी. व्हाट रिमेन्स इज़ नॉट नथिंग, बट द नेगेशन ऑफ़ द विल-टु-लिव—अ काइंड ऑफ़ पीसफ़ुल नथिंगनेस." (शॉपेनहावर, भाग-I, §71, पृ. 403)

यह "पीसफ़ुल नथिंगनेस" बौद्ध धर्म की 'शून्यता' या वेदान्त की 'निर्गुण ब्रह्म' से तुलनीय है, जहाँ चेतना सभी द्वैतों से मुक्त होकर एक ऐसी स्थिति में पहुँचती है जो वर्णनातीत है—न सुख है, न दुःख, न इच्छा है, न तृप्ति, केवल स्थितप्रज्ञ मौन।

यहाँ ध्यान देना आवश्यक है कि शॉपेनहावर के अनुसार यह अवस्था किसी इच्छित लक्ष्य की तरह नहीं प्राप्त की जा सकती, क्योंकि उसे पाने की इच्छा स्वयं "विल" का ही एक रूप है। अतः यह मुक्ति तभी संभव है जब व्यक्ति सभी इच्छाओं को छोड़ने में भी इच्छा न रखे—यानी स्पष्ट निषेध, न कि कोई लक्ष्य। यही कारण है कि शोपेनहावर का मोक्षदर्शन पारंपरिक धार्मिक मुक्ति से भिन्न है। यह कोई स्वर्ग या पुनर्जन्म नहीं, बल्कि "विल" के संपूर्ण उन्मूलन द्वारा प्राप्त होने वाली परम शांति है।

दार्शनिक ब्रायन मैगी इसे "मेटाफ़िज़िकल लिबरेशन" कहते हैं—"फॉर शोपेनहावर, द ओनली टू लिबरेशन इज़ मेटाफ़िज़िकलः टू सीज़ टू बी ऐज़ अ विलिंग बीइंग इज़ टू सीज़ टू सफ़र." (मॅगी, पृ. 215)

इस बिंदु पर शॉपेनहावर के दर्शन में एक अद्भुत परिवर्तन घटता है—वह जो अब तक नकार था, वह अब पूर्ण स्वीकार्य हो जाता है। वह जो 'कुछ नहीं' कहा जा रहा है, वह वस्तुतः 'सब कुछ' से परे की स्थिति है।

नैतिकता और करुणा का तुलनात्मक धरातल

शॉपेनहावर की नैतिकता भी बौद्ध धर्म की अहिंसा और करुणा के सिद्धांतों से मिलती है। उनका मानना था कि करुणा ही सभी नैतिक गुणों की जननी है। ठीक वैसे ही जैसे बौद्ध धर्म में दया को संपूर्ण धर्म का सार कहा गया है। बौद्ध धर्म की

तरह शॉपेनहावर भी मानते थे कि किसी को कष्ट देना केवल नैतिक रूप से नहीं, बल्कि तात्त्विक रूप से भी दोषपूर्ण है, क्योंकि सब में वही मूल सत्ता ("विल") कार्य कर रही है।

निष्कर्ष

शॉपेनहावर का दर्शन किसी तात्कालिक बौद्धिक आवेग का उत्पाद नहीं, बल्कि मानव अस्तित्व की गुत्थियों के प्रति एक गहन, सघन और असुविधाजनक उत्तर है, ऐसा उत्तर जो आज के आधुनिक, व्यग्र और उपभोक्तावादी समय में पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक जान पड़ता है।

वह युग जिसमें शॉपेनहावर ने अपने चिंतन को आकार दिया, यूरोप में प्रगति, विज्ञान, और उत्पादन के आदर्शों की अंधी दौड़ का समय था। परंतु इसी समय वह एक ऐसा स्वर थे जिसने कहा कि "मनुष्य सुख की खोज में नहीं, बल्कि स्वयं से बचने के लिए भाग रहा है।" उनका यह कहना आज की उपभोक्तावादी संस्कृति पर भी उतना ही लागू होता है, जहाँ तकनीकी विकास, आभासी जुड़ाव, और आर्थिक उन्नति के पीछे छिपी अंतहीन असंतुष्टि और आंतरिक अकेलापन उसी "विल" की अभिव्यक्ति है, जिसकी व्याख्या उन्होंने दो शताब्दी पहले की थी।

उनका "विल" का दर्शन केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि मानव स्वभाव का एक नग्न सत्य है। एक ऐसी शक्ति जो हमें लगातार प्रेरित करती है, परंतु कभी तृप्त नहीं करती। यह नैतिक नहीं, बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं, बल्कि महज अंध इच्छा है और यही शॉपेनहावर के अनुसार मानव दुःख की जड़ है।

इसलिए, उनकी मुक्ति की धारणा—जो न तो पारंपरिक धार्मिक मोक्ष है, न ही पश्चिमी दर्शन की मुक्त चेतना—वह एक तीसरा मार्ग सुझाती है—एक ऐसा मार्ग जो आत्म-निरीक्षण, करुणा और अंततः आत्म-निषेध की ओर ले जाता है।

शॉपेनहावर के अनुसार, मुक्ति कोई उपलब्धि नहीं, कोई पुरस्कार नहीं, बल्कि एक त्याग है। इच्छा के समस्त रूपों का त्याग, स्वयं के होने की लालसा का अंत। और यही त्याग, उनकी दृष्टि में, वास्तविक मुक्ति का द्वार है।

"द ग्रेटेस्ट विज्डम लाइज़ नॉट इन द मल्टिप्लिकेशन ऑफ़ वॉन्ट्स, बट इन देयर रैडिकल सीज़ेशन." (शॉपेनहावर, भाग-II, §170)

यह धारणा आज के समय में भी एक मौन प्रतिरोध है—उस संस्कृति के विरुद्ध जो हमें निरंतर उपभोग, प्रतिस्पर्धा, और आत्म-सिद्धि की ओर धकेलती है। आज जब मानसिक तनाव, अवसाद और अस्तित्वगत संकट बढ़ रहे हैं, शॉपेनहावर की यह दृष्टि कि सच्चा सुख इच्छाओं की पूर्ति में नहीं, अपितु इच्छाओं के अंत में है, एक अत्यंत मूल्यवान बोध प्रस्तुत करती है।

उनकी नैतिकता भी आज के समय में करुणा और संवेदनशीलता को केंद्र में रखने की आवश्यकता की पुष्टि करती है। जब समाज अधिकाधिक व्यक्तिगत, स्वकेंद्रित और संघर्षशील होता जा रहा है, तब शॉपेनहावर का यह विचार कि "सच्ची नैतिकता करुणा से उत्पन्न होती है," केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि संवेदनात्मक नैतिक क्रांति का प्रस्ताव है।

दर्शनशास्त्र के इतिहास में शॉपेनहावर एक ऐसे दार्शनिक के रूप में खड़े हैं जो अंधकार से मुक्ति की बात करते हैं, पर बिना झूठी आशाओं और रहस्यवादी ढकोसलों के। उनके लिए मुक्ति कोई दिव्य हस्तक्षेप नहीं, बल्कि मानव चेतना का स्वयं से ही किया गया विद्रोह है—एक मौन, गहन और ठोस अस्वीकार।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शॉपेनहावर, ऑर्थर, द वर्ल्ड ऐज विल एंड रेप्रेजेटेशन, भाग-I, अनुवादक ई.एफ.जे. पायने, डोवर पब्लिकेशन्स, न्यूयॉर्क, 1969, भाग-I, पृ.सं. 142
2. उपर्युक्त, पृ.सं. 150
3. उपर्युक्त, पृ.सं. 56
4. शॉपेनहावर, ऑर्थर, परेरगा एंड पैरालिपोमेना, ई.एफ.जे. पायने, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, इंगलैंड, 1974, भाग II
5. उपर्युक्त, भाग I
6. शॉपेनहावर, ऑर्थर, द वर्ल्ड ऐज विल एंड रेप्रेजेटेशन, पूर्वोक्त, पृ.सं. 178
7. उपर्युक्त, पृ.सं. 179
8. जैनवे, क्रिस्टोफर, सेल्फ एंड वर्ल्ड इन शॉपेनहावर, ज फिलॉसफी, क्लैरेंडन प्रेस, इंगलैंड, 1989, पृ.सं. 112
9. यंग, जूलियन, शॉपेनहावर, राउटलैज, लंदन, 2005, पृ.सं. 64
10. शॉपेनहावर, ऑर्थर, द वर्ल्ड ऐज विल एंड रेप्रेजेटेशन, पूर्वोक्त, पृ.सं. 257ए

11. मॅगी, ब्रायन, द फिलॉसफी ऑफ शॉपेनहावर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, इंगलैंड, 1997, पृ.सं. 134
12. ऐटवेल, जॉन ई, शॉपेनहावर : द ह्यूमन कैरेक्टर, टेम्पल यूनिवर्सिटी प्रेस, फिलाडेल्फिया, 1990, पृ.सं. 94
13. जैनवे, क्रिस्टोफर, पूर्वोक्त, पृ.सं. 118
14. शॉपेनहावर, ऑर्थर, द वर्ल्ड ऐज विल एंड रेप्रेजेटेशन, पूर्वोक्त, पृ.सं. 372
15. जैनवे, क्रिस्टोफर, पूर्वोक्त, पृ.सं. 129
16. यंग, जूलियन, पूर्वोक्त, पृ.सं. 86
17. शॉपेनहावर, ऑर्थर, द वर्ल्ड ऐज विल एंड रेप्रेजेटेशन, पूर्वोक्त, पृ.सं. पृ॰ 389
18. उपर्युक्त, पृ.सं. 403
19. मॅगी, ब्रायन, पूर्वोक्त, पृ.सं. 215
20. शॉपेनहावर, ऑर्थर, द वर्ल्ड ऐज विल एंड रेप्रेजेटेशन, पूर्वोक्त, पृ.सं. 170